

श्रीमद्भागवतम् स्कन्ध 5 अध्याय 20: छह द्वीप और लोकालोक

22 September 2026



पाठ से पहले एक निवेदन

श्रीमद्भागवत महापुराण के ये अध्यायवार सार गीता प्रेस भागवत को मुख्य आधार मानकर तैयार किए गए हैं। ये भागवत के अध्ययन में सहायक हैं, मूल ग्रंथ का स्थान नहीं ले सकते।

अध्ययन का मुख्य और अनुशंसित मार्ग गीता प्रेस की भागवत पुस्तक से सीधा पाठ है। यात्रा में, घर से दूर, या जब पुस्तक पास न हो, तब निरंतर अध्ययन, पुनरावृत्ति और समझ के लिए इन सारों का सहारा लिया जा सकता है।



वलय पर वलय — जम्बूद्वीप से परे छह द्वीप सृष्टि के मुख पर फैले हुए हैं, प्रत्येक अपने ही चमकते सागर से घिरा, प्रत्येक एक महान् वृक्ष से मण्डित, और सब अन्ततः लोकालोक की विशाल प्राचीर के भीतर धारित — वह पर्वत जो प्रकाश के लोक को अन्धकार के लोक से विभाजित करता है।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

श्रीमद्भागवतम् विज्ञम में पुनः आपका स्वागत है — श्रीमद्भागवत महापुराण की पावन कथाओं और शिक्षाओं की एक भक्तिपूर्ण यात्रा। श्रीशुक के साथ जम्बूद्वीप के विविध देशों में विचरण के पश्चात्, अब हम दूर बाहर की ओर ले जाए जाते हैं — मधुरता और प्रकाश के एक-एक सागर के पार — उन छह महान् द्वीपों के दर्शन को जो पृथ्वी को घेरे हुए हैं, और उनसे परे समस्त प्रकाशित आकाश की स्वर्णिम सीमा तक। किन्तु यह किन्हीं दूर-देशों का मात्र मानचित्र नहीं है। इनमें से प्रत्येक लोक में भागवत हमें वही धड़कता हृदय दिखाता है: असंख्य भाग्यशाली प्राणी उपासना में अपने हाथ उठाए हुए, प्रत्येक एक ही भगवान् को प्रकाश के भिन्न-भिन्न मुख में पूजता हुआ — कभी प्रखर सूर्य, कभी सौम्य चन्द्र, कभी अग्नि, जल, वायु और कमलासीन ब्रह्मा के रूप में। इस दर्शन को हम विस्मय से ग्रहण करें, भगवान् की अनन्त सृष्टि के रूप में, और प्रेम से, प्रत्येक द्वार से उनके मुख को दीप्त होते देखते हुए।

अध्याय-परिचय

- शास्त्र: श्रीमद्भागवत महापुराण
- स्कन्ध: 5 (पंचम स्कन्ध)
- अध्याय: 20 (बीसवाँ अध्याय)
- अध्याय-शीर्षक: छह द्वीप और लोकालोक पर्वत
- प्रमुख वक्ता: श्रीशुकदेव गोस्वामी (श्रीशुक), राजा परीक्षित को कथा सुनाते हुए
- प्रमुख श्रोता: राजा परीक्षित — और यह संवाद सूत गोस्वामी द्वारा नैमिषारण्य में एकत्रित ऋषियों को पुनः सुनाया जाता है
- मुख्य स्थल: भूमण्डल का ब्रह्माण्डीय विस्तार — जम्बूद्वीप से परे छह द्वीप, उन्हें घेरने वाले सागर, और वलयाकार लोकालोक पर्वत
- केन्द्रीय विषय: प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर द्वीपों का, उनके सागरों, शासकों और निवासियों तथा प्रत्येक में पूजे जाने वाले भगवान् के रूप सहित एक दर्शन; फिर लोकालोक पर्वत, चार दिग्गज, वहाँ भगवान् की विष्वक्सेन सहित उपस्थिति, और ब्रह्माण्ड-अण्ड में सूर्य का स्थान
- प्रमुख श्लोक-सीमा: स्कन्ध 5, अध्याय 20, श्लोक 1–46
- मूल संस्करण: गीता प्रेस श्रीमद्भागवत महापुराण

पिछले अध्याय से

उन्नीसवें अध्याय में, श्रीशुक ने जम्बूद्वीप का अपना स्नेहमय चित्र पूर्ण किया। उन्होंने किम्पुरुष-वर्ष में हनुमान् जी की भगवान् राम की अविरत उपासना का, और भारत-वर्ष में देवर्षि नारद द्वारा भक्ति की दिव्य विधि सिखाए जाने का वर्णन किया, जहाँ नर-नारायण की आराधना होती है। सबसे बढ़कर उन्होंने भारत-वर्ष की परम महिमा गाई, इसी कर्म और उपासना की भूमि की, जिसका सौभाग्य स्वर्ग के देवता भी चाहते हैं — क्योंकि यहीं मनुष्य-जन्म भगवान् की सेवा में लगाया जा सकता है। भारत-वर्ष की उस स्तुति को हृदय में लिए, अब दृष्टि परे के लोकों की ओर विस्तृत होती है।

प्लक्षद्वीप और सूर्य के उपासना

श्रीशुक अपनी कथा पुनः आरम्भ करते हैं, अब शेष द्वीपों का उनके विस्तार, स्वरूप और आकृति के अनुसार वर्णन करते हुए। जैसे जम्बूद्वीप मेरु पर्वत को घेरता है और समान चौड़ाई के लवण-सागर से वलयित है, वैसे ही वह लवण-सागर प्लक्षद्वीप से घिरा है, जो दुगुना चौड़ा है — दो लाख योजन विस्तृत — जैसे कोई खाई बाहरी उपवन से घिरी हो। उस पर एक देदीप्यमान प्लक्ष वृक्ष उठता है, जम्बूद्वीप के जम्बू वृक्ष के समान विशाल, जिससे द्वीप को उसका नाम मिलता है; और उसके मूल में सात जिह्वाओं वाले अग्निदेव निवास करते हैं। इसके प्रथम शासक, इध्मजिह्व, सम्राट् प्रियव्रत के द्वितीय पुत्र, ने भूमि को अपने सात पुत्रों में सात वर्षों के रूप में बाँटा और फिर, सब कुछ त्यागकर, परमात्मा में लीन हो गए।

वहाँ चार वर्णों के लोग — हंस, पतंग, ऊर्ध्वायन और सत्यांग नामों से — सात पावन नदियों में स्नान करते हैं, रजस् और तमस् के अन्धकार को झाड़ देते हैं, और देवताओं के समान तेजस्वी शरीरों में सहस्र वर्ष जीते हैं। और वे तीनों वेदों के कर्मकाण्ड से भगवान् की सूर्यदेव के रूप में उपासना करते हैं, जो स्वर्ग का द्वार और तीनों वेदों का साक्षात् स्वरूप हैं। यही प्रार्थना उनके अधरों पर है:

प्रत्नस्य विष्णो रूपं यत्सत्यस्यर्तस्य ब्रह्मणः ।

अमृतस्य च मृत्योश्च सूर्यमात्मानमीमहीति ॥ ५ ॥

pratnasya viṣṇo rūpaṁ yat satyasyartasya brahmaṇaḥ amṛtasya ca mṛtyoś ca sūryam ātmānam imahīti

अर्थ: हम सूर्यदेव की शरण ग्रहण करते हैं — जो सर्वप्राचीन भगवान् विष्णु का प्रत्यक्ष रूप हैं, सत्य और ऋत (विश्व-व्यवस्था) की, वेद की, और जो कुछ अमर है तथा जो कुछ मरणशील है — सबकी आत्मा हैं। (स्कन्ध 5, अध्याय 20, श्लोक 5)

और श्रीशुक कृपा का एक कोमल स्वर जोड़ते हैं: प्लक्ष से आरम्भ होने वाले इन पाँच द्वीपों में, दीर्घ आयु, प्रखर इन्द्रियाँ, देह और मन का बल, बुद्धि और पराक्रम प्रत्येक प्राणी का समान रूप से स्वाभाविक अधिकार हैं, बिना भेद के मुक्त-हस्त दिए गए।



विशाल प्लक्ष वृक्ष के नीचे, जहाँ सात जिह्वाओं वाले अग्निदेव निवास करते हैं, प्लक्षद्वीप के भाग्यशाली लोग भगवान् की देदीप्यमान सूर्यदेव के रूप में उपासना में अपने हाथ उठाते हैं (श्लोक 5)।

शाल्मलद्वीप और चन्द्र को उपासना

जैसे प्लक्षद्वीप मधुर इक्षुरस के सागर से घिरा है, वैसे ही उससे परे शाल्मलद्वीप शोभित होता है, चौड़ाई में दुगुना, अपनी दूसरी ओर सुरा (मदिरा) के सागर से घिरा हुआ। इस द्वीप पर महान् शाल्मलि, सेमल का वृक्ष खड़ा है, प्लक्ष के समान विशाल, और उस पर विद्वान् कहते हैं कि पक्षिराज गरुड़ का निवास है, जो वेद-मन्त्रों से भगवान् की महिमा गाते हैं — वे मन्त्र जो उनके अंग ही हैं। इसी वृक्ष से द्वीप को उसका नाम मिलता है। इसके प्रथम शासक यज्ञबाहु थे, प्रियव्रत के तृतीय पुत्र, जिन्होंने इसके सात वर्ष अपने सात पुत्रों में बाँटे।

वहाँ के लोग — श्रुतधर, वीर्यधर, वसुन्धर और इषन्धर नामों से — वेद-मन्त्रों से उस भगवान् की उपासना करते हैं जो सबकी आत्मा हैं, चन्द्रदेव के रूप में प्रकट, वेद के मूर्त रूप। उनकी प्रार्थना कोमलता से उठती है, स्वयं चाँदनी के समान:

स्वगोभिः पितृदेवेभ्यो विभजन् कृष्णशुक्लयोः ।

प्रजानां सर्वासां राजान्धः सोमो न आस्त्विति ॥ १२ ॥

sva-gobhiḥ pitṛ-devebhyo vibhajan kṛṣṇa-śuklayoḥ prajānāṁ sarvāsāṁ rājā-ndhaḥ somo na āstv iti

अर्थ: वे चन्द्रदेव — जो कृष्ण और शुक्ल पक्षों में अपनी किरणों से पितरों, देवताओं और प्रत्येक प्राणी को पोषक अन्न बाँटते हैं — हमारे राजा और रक्षक हों। (स्कन्ध 5, अध्याय 20, श्लोक 12)



विशाल शाल्मलि वृक्ष के नीचे, गरुड़ का विश्राम-स्थल जो भगवान् की महिमा गाते हैं, शाल्मलद्वीप के लोग भगवान् की सौम्य चन्द्रदेव के रूप में उपासना करते हैं, जो सबको पोषण देते हैं (श्लोक 12)।

कुशद्वीप और पावेत्र आग्ने को उपासना

सुरा के सागर से परे, और दुगुना चौड़ा, कुशद्वीप है, अपने बाहरी तट पर घृत (घी) के सागर से वलयित। यहाँ पवित्र कुश घास का एक स्तम्भ उगता है, जिसे भगवान् ने स्वयं प्रकट किया, जो द्वीप को उसका नाम देता है और, बिना ताप के प्रकाश देती दूसरी ज्वाला के समान, अपने कोमल अंकुरों की मृदु आभा से समस्त दिशाओं को उज्ज्वल करता है। इसके प्रथम शासक, हे परीक्षित — जैसा श्रीशुक राजा से कहते हैं — हिरण्यरेता थे, प्रियव्रत के चतुर्थ पुत्र, जिन्होंने द्वीप को अपने सात पुत्रों में न्यायपूर्वक बाँटा और फिर स्वयं पवित्र तपस्या में लग गए।

इस भूमि के लोग — कुशल, कोविद, अभियुक्त और कुलक — अपनी नदियों से पवित्र होकर, अपने कर्मकौशल से भगवान् की अग्निदेव के रूप में उपासना करते हैं, यह गाते हुए:

परस्य ब्रह्मणः साक्षाज्जातवेदोऽसि हव्यवाट् ।

देवानां पुरुषाङ्गानां यज्ञेन पुरुषं यजेति ॥ १७ ॥

parasya brahmaṇaḥ sākṣāj jāta-vedo 'si havyavāṭ devānāṁ puruṣāṅgānāṁ yajñena puruṣaṁ yajeti

अर्थ: हे अग्निदेव, आप साक्षात् परब्रह्म को हवि पहुँचाने वाले हैं; उन देवताओं के लिए किए गए यज्ञ से, जो परम पुरुष के अंग हैं, हम उसी परम पुरुष श्रीहरि की उपासना करें। (स्कन्ध 5, अध्याय 20, श्लोक 17)



जहाँ दिव्य कुश घास कुशद्वीप में एक शीतल, कोमल ज्वाला के समान चमकती है, वहाँ इसके लोग पवित्र यज्ञ करते हैं, भगवान् की अग्निदेव के रूप में उपासना करते हुए, जो प्रत्येक आहुति के वाहक हैं (श्लोक 17)।

क्रौञ्चद्वीप और जल की उपासना

घृत के सागर से परे, फिर दुगुना चौड़ा, क्रौञ्चद्वीप है, क्षीर (दुग्ध) के सागर से घिरा। यहाँ पर्वतराज क्रौञ्च खड़ा है, जिससे द्वीप का नाम पड़ा। यद्यपि इसकी ढलानें और कुञ्ज कभी गुह — भगवान् शिव के वीर पुत्र — के अस्त्र से विदीर्ण हुए थे, तथापि वह पर्वत समस्त भय से मुक्त हो गया, सदा क्षीर-सागर के फुहारों से नहाया और जलदेव वरुण द्वारा चारों ओर से स्नेहपूर्वक रक्षित। इसके शासक, घृतपृष्ठ, प्रियव्रत के पंचम पुत्र, ने अपने पुत्रों के लिए सात वर्ष रचे और फिर, प्रबुद्ध होकर, अपनी अन्तरात्मा स्वरूप श्रीहरि के चरण-कमलों की शरण ली।

इन भूमियों के लोग — पुरुष, ऋषभ, द्रविण और देवक — जल के रूप में देवता की उपासना करते हैं, अपनी जुड़ी हुई अंजलियों को जल से भरे हुए, और प्रार्थना करते हैं:

आपः पुरुषवीर्याः स्थ पुनन्तीर्भूर्भुवःसुवः ।

ता नः पुनीतामीवघ्नीः स्पृशतामात्मना भुव इति ॥ २३ ॥

āpaḥ puruṣa-vīryāḥ stha punantīr bhūr-bhuvaḥ-suvaḥ tā naḥ punitāmīva-ghnīḥ spṛśatām ātmanā bhuva iti

अर्थ: हे जल, तुम परम पुरुष की ही शक्ति धारण करते हो और तीनों लोकों को पवित्र करते हो; हे पापनाशक, जब हम तुम्हें अपनी देह से स्पर्श करें तब हमें पवित्र करो। (स्कन्ध 5, अध्याय 20, श्लोक 23)



क्षीर-सागर के फुहारों और वरुण की रक्षा से निर्भय बने पर्वत क्रौञ्च के पास, क्रौञ्चद्वीप के लोग जल से भरी जुड़ी अंजलियाँ उठाते हैं, भगवान् की उन पावन जलों के रूप में उपासना करते हुए जो समस्त पाप धो देते हैं (श्लोक 23)।

शाकद्वीप और प्राण को उपासना

क्षीर के सागर से परे शाकद्वीप है, बत्तीस लाख योजन चौड़ा, दधिमण्ड (मट्टे) के सागर से घिरा। इस पर शाक वृक्ष खड़ा है जो द्वीप को नाम देता है, जिसकी सुगन्ध इतनी मधुर है कि कहते हैं वह समूचे द्वीप को सुवासित कर देती है। इसके प्रथम शासक भी प्रियव्रत के पुत्र थे — मेधातिथि, छठे — जिन्होंने अपने सात पुत्रों को इसके सात वर्षों पर स्थापित किया और फिर तपस्या के वन में चले गए, अपना मन पूर्णतया भगवान् अनन्त को समर्पित किए हुए।

उस द्वीप के चार वर्ण — ऋतव्रत, सत्यव्रत, दानव्रत और अनुव्रत — प्राणायाम के अभ्यास से रजस् और तमस् को शान्त करके, गहनतम समाधि में भगवान् की वायुदेव के रूप में उपासना करते हैं, और प्रार्थना करते हैं:

अन्तःप्रविश्य भूतानि यो बिभर्त्यात्मकेतुभिः ।

अन्तर्यामीश्वरः साक्षात्पातु नो यद्वशे स्फुटम् ॥ २८ ॥

antaḥ-praviśya bhūtāni yo bibharty ātma-ketubhiḥ antaryāmīśvaraḥ sākṣāt pātu no yad-vaśe sphuṭam

अर्थ: वे भगवान्, अन्तर्यामी — जिनके वश में यह समस्त दृश्य जगत् स्थित है, और जो समस्त प्राणियों में प्रविष्ट होकर उन्हें अपनी उपस्थिति के चिह्नों, प्राण-वायुओं द्वारा धारण करते हैं — हमारी रक्षा करें। (स्कन्ध 5, अध्याय 20, श्लोक 28)



सुगन्धित शाकद्वीप में, मधुर-गन्ध वाले शाक वृक्ष के नीचे, इसके लोग गहन ध्यान में अपनी श्वास स्थिर करते हैं और भगवान् की वायुदेव के रूप में उपासना करते हैं, जो अन्तर्यामी होकर सबको भीतर से धारण करते हैं (श्लोक 28)।

पुष्करद्वीप और ब्रह्मा की उपासना

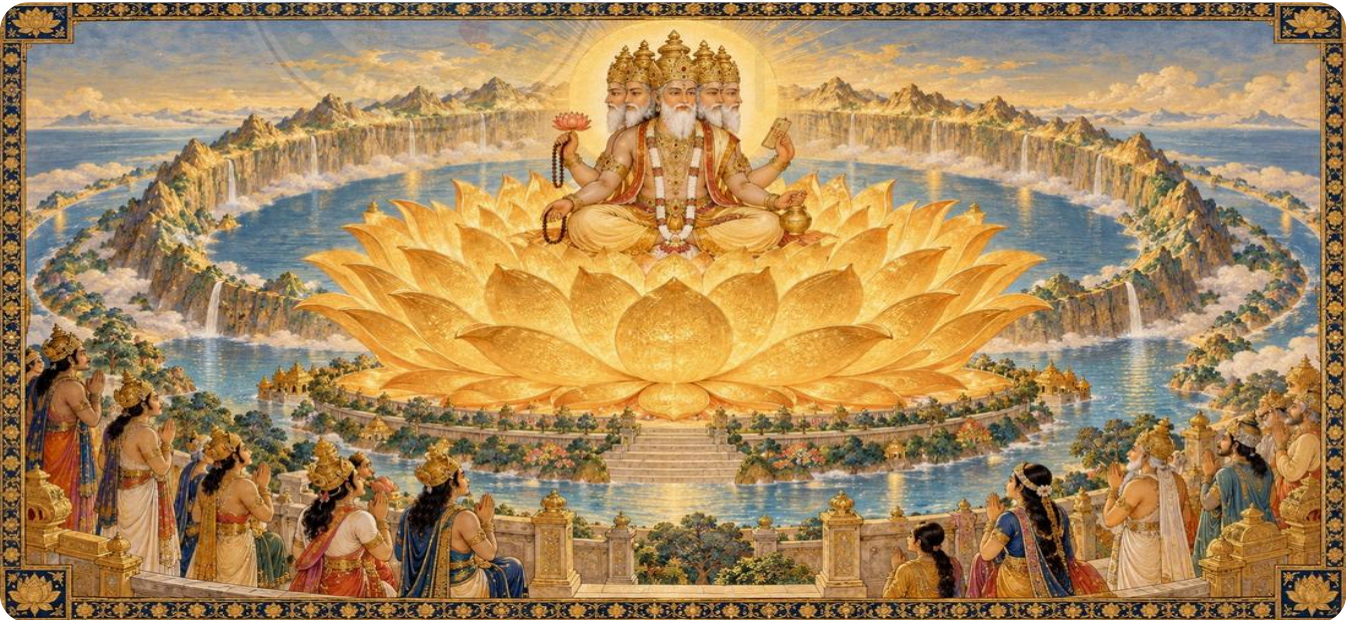
दधिमण्ड के सागर से परे इन भूमियों में अन्तिम, पुष्करद्वीप है, चौड़ाई में दुगुना, अपनी दूसरी ओर मधुर स्वादु जल के सागर से घिरा। यहाँ करोड़ों स्वर्ण-पंखुड़ियों वाला एक विशाल कमल खिलता है, प्रज्वलित अग्नि की ज्वालाओं के समान उज्ज्वल — गौरवशाली ब्रह्मा का नियत आसन। द्वीप के मध्य में एक ही पर्वत-श्रेणी उठती है, मानसोत्तर, दस हजार योजन ऊँची और चौड़ी, जो भीतरी और बाहरी वर्षों को विभाजित करती है। उस पर, चारों दिशाओं में, इन्द्र और अन्य लोकपालों के चार नगर खड़े हैं; और उसके ऊपर सूर्य के रथ का संवत्सर-चक्र घूमता है, जब वह मेरु पर्वत की परिक्रमा देवताओं के एक दिन-रात में करता है। इसके शासक, वीतिहोत्र, प्रियव्रत के सप्तम पुत्र, ने अपने दो पुत्रों रमणक और धातकि को इसके दो वर्षों पर नियुक्त किया और, अपने बड़े भाइयों के समान, स्वयं को पूर्णतया भगवान् की सेवा में लगा दिया।

इन दो भूमियों के लोग भगवान् की सृष्टिकर्ता ब्रह्मा के रूप में उपासना करते हैं, और गाते हैं:

यत्तत्कर्ममयं लिङ्गं ब्रह्मलिङ्गं जनोऽर्चयेत् ।
एकान्तमद्वयं शान्तं तस्मै भगवते नम इति ॥ ३३ ॥

yat tat karmamayam liṅgam brahma-liṅgam jano 'rcayet ekāntam advayam śāntam tasmai bhagavate nama iti

अर्थ: हम भगवान् के उस शान्त और गौरवशाली रूप को नमन करते हैं — जो पवित्र कर्म से उत्पन्न है, वह चिह्न जिससे ब्रह्म जाना जाता है, जिसे लोग पूजते हैं, जो पूर्णतया अद्वितीय है और जिसका एकमात्र लक्ष्य वही परम सत्य है। (स्कन्ध 5, अध्याय 20, श्लोक 33)



पुष्करद्वीप पर, जहाँ अनगिनत पंखुड़ियों वाला एक विशाल स्वर्ण-कमल ब्रह्मा का आसन बनाता है और मानसोत्तर पर्वत उसके हृदय में उठता है, लोग भगवान् की सृष्टिकर्ता के रूप में उपासना करते हैं (श्लोक 33)।

लोकालोक पर्वत और उससे परे की भूमि

अब ऋषि हमारी दृष्टि को प्रकाशित लोक के ठीक किनारे तक ले जाते हैं। स्वादु जल के सागर से परे, वे कहते हैं, वलयाकार रूप में लोकालोक पर्वत खड़ा है, वह सीमा जो सूर्य के प्रकाश से स्पर्शित प्रदेश को उस प्रदेश से विभाजित करती है जो सदा अन्धकार में रहता है। सागर से परे मानसोत्तर और मेरु के बीच जितनी चौड़ी भूमि है उतनी ही एक भूमि फैली है; और उससे आगे शुद्ध स्वर्ण के तल वाली एक और भूमि है, दर्पण की चादर के समान चमकती, जहाँ गिराई गई कोई वस्तु फिर कभी नहीं मिलती — इसलिए वह प्रत्येक प्रकार के जीवन द्वारा त्यागी हुई है।

उचित ही उस पर्वत को लोकालोक कहते हैं, क्योंकि वह लोक — प्रकाश के जगत् — और अलोक — सूर्य की पहुँच से परे के जगत् — को पृथक् रखता है। सर्वशक्तिमान् भगवान् ने उसे तीनों लोकों से परे एक सर्वव्यापी प्राचीर के रूप में स्थापित किया है, इतनी विशाल और इतनी ऊँची कि सूर्य से ध्रुव तक के समस्त ज्योतिर्मय पिण्डों की किरणों, जो इस ओर तीनों लोकों को आप्लावित करती हैं, दूसरी ओर कभी नहीं जा पातीं। मेरु पर्वत से लोकालोक तक का समूचा प्रदेश भूमण्डल के व्यास का एक चतुर्थांश घेरता है, जिसे विवेकी जन पचास करोड़ योजन आँकते हैं।

चार दिग्गज और समस्त लोकों को धारण करने वाले भगवान्

उस महान् पर्वत से परे चार शक्तिशाली गजराज निवास करते हैं — ऋषभ, पुष्करचूड, वामन और अपराजित — जिन्हें समस्त विश्व के आराध्य स्वयम्भू ब्रह्मा ने चारों दिशाओं में नियुक्त किया है, और जो विशाल भूमण्डल को सन्तुलन में धारण करने के लिए उत्तरदायी हैं। और यहाँ यह दर्शन अपने पावन शिखर पर पहुँचता है। इन गजराजों और लोकपालों की, जो उनकी अपनी विभूति के अंश हैं, शक्तियों को बढ़ाने के लिए, और प्रत्येक लोक के कल्याण के लिए, स्वयं सर्वशक्तिमान् भगवान् — परम पुरुष, परम गौरव के स्वामी, सबके अन्तर्यामी — उस पर्वत पर चारों ओर निवास करते हैं, विष्वक्सेन और अपने श्रेष्ठ पार्षदों से घिरे हुए। वहाँ वे अपने विशुद्ध सत्त्वमय दिव्य रूप को प्रकट करते हैं, पूर्ण धर्म, सर्वज्ञता, वैराग्य और ऐश्वर्य तथा आठ महासिद्धियों से चिह्नित, अपनी चार बलिष्ठ भुजाओं को अपने ही शंख, चक्र और अन्य आयुधों से अलंकृत किए हुए।

यह रूप, श्रीशुक हमें बताते हैं, भगवान् ने अपनी ही योगमाया, अपनी अद्भुत सृजन-शक्ति द्वारा विकसित समस्त लोकों के स्नेहमय पालन के लिए धारण किया है। लोकालोक की दूसरी ओर फैले अलोक — अप्रकाशित प्रदेश — का विस्तार, कहते हैं, इस ओर के प्रकाशित विस्तार के बराबर है; और अलोक से भी परे विवेकी जन उस पावन क्षेत्र की घोषणा करते हैं जिस तक केवल महान् योगेश्वर ही पहुँच सकते हैं।



वलयाकार लोकालोक पर्वत पर, जहाँ चार महान् गजराज भूमण्डल को धारण करते हैं, भगवान् चारों ओर अपने देदीप्यमान चतुर्भुज रूप में निवास करते हैं, विष्वक्सेन और अपने श्रेष्ठ पार्षदों से घिरे, समस्त लोकों के कल्याण के लिए (श्लोक 34-40)।

ब्रह्माण्ड-अण्ड के हृदय में सूर्य

श्रीशुक सूर्य की महिमा से समापन करते हैं। उसका बिम्ब ब्रह्माण्ड-अण्ड के ठीक मध्य में स्थित है, उसके ऊपरी और निचले कपालों के बीच के अवकाश के केन्द्र में; और सूर्य के बिम्ब से बाहरी कपाल तक की दूरी हर ओर पचीस करोड़ योजन है। क्योंकि सूर्यदेव इस निर्जीव अण्ड में विराट् पुरुष के रूप में प्रकट हुए, इसलिए वे तभी से मार्तण्ड कहलाते हैं; और क्योंकि वे ब्रह्माण्ड के स्वर्ण-अण्ड के भीतर गर्भ के समान हैं, इसलिए वे हिरण्यगर्भ भी कहलाते हैं।

सूर्य से ही दिशाएँ और स्वर्ग, पृथ्वी और उसके समस्त विभाग, भोग और परम मुक्ति के लोक, नरक और पाताल-लोक स्पष्ट रूप से पृथक् होते हैं। और देवताओं तथा मनुष्यों की, पशुओं और सरीसृपों तथा समस्त वनस्पति-जगत् की — बिना किसी अपवाद के प्रत्येक प्राणी की — सूर्यदेव ही साक्षात् आत्मा हैं, प्राणस्वरूप, और दृष्टि के दान पर अधिष्ठित देवता। इस प्रकार भूमण्डल का वर्णन अपने देदीप्यमान समापन को आता है।

इस अध्याय की प्रमुख शिक्षाएँ

देवगण भगवान् के ही अंश हैं, प्रतिद्वन्द्वी देवता नहीं। इस अध्याय से स्वाभाविक रूप से एक प्रश्न उठता है: यदि प्रत्येक द्वीप एक भिन्न शक्ति के आगे झुकता है — सूर्य, अग्नि, चन्द्र, ब्रह्मा — तो क्या ये सचमुच भिन्न-भिन्न देवता हैं? श्रीशुक की अपनी स्तुतियाँ ही इसका उत्तर देती हैं। सूर्य को केवल विष्णु के “प्रत्यक्ष रूप” के रूप में आवाहित किया जाता है (श्लोक 5); अग्निदेव से केवल हवि को आगे पहुँचाने का निवेदन किया जाता है, क्योंकि उसके द्वारा वस्तुतः श्रीहरि की ही उपासना होती है (श्लोक 17); और ब्रह्मा, अपनी विशाल महिमा के बावजूद, केवल उस चिह्न के रूप में नमस्कृत होते हैं जिससे एक भगवान् जाना जाता है — द्वैत में, सेवक के रूप में, कभी समान रूप में नहीं (श्लोक 33)। भागवत हमें चुपचाप यह सिखा रहा है कि देवगण भगवान् के अपने अंश और नियुक्त सेवक हैं, प्रतिद्वन्द्वी शक्तियाँ नहीं; उन्हें जो कुछ अर्पित होता है वह अन्ततः उन्हीं भगवान् तक पहुँचता है, जो वास्तविक और अन्तिम भोक्ता हैं। यही कारण है कि छह लोकों में फैला यह अध्याय बार-बार, प्रत्येक स्तुति में, उसी एक मुख की ओर लौट आता है।

एक ही भगवान् प्रत्येक रूप में पूजे जाते हैं। छह विशाल लोकों में लोग सूर्य, चन्द्र, अग्नि, जल, प्राण और कमल-जन्मा ब्रह्मा को पूजते हैं — किन्तु प्रत्येक उसी परम भगवान् का द्वार है। भागवत हमें सिखाता है कि हम जिस भी ज्योतिर्मय शक्ति की पूजा करें, उसके पीछे वही एक विष्णु, सबकी आत्मा, खड़े हैं।

समस्त सृष्टि भगवान् की है, और सब उन्हीं की ओर मुड़ती है। सागर के परे सागर, वृक्ष के परे वृक्ष, लोक के परे लोक — ब्रह्माण्ड की यह असीम विशालता यहाँ हमें अभिभूत करने को नहीं, अपितु उस स्रष्टा के प्रति विस्मय से हृदय को उठाने को अनावृत की गई है जिनकी महिमा इसे पूर्ण करती है।

वैराग्य सबसे बड़े शासन को भी मुकुट पहनाता है। इन द्वीपों के प्रत्येक शासक — प्रियव्रत के पुत्रों — ने अपना राज्य अपने उत्तराधिकारियों में बाँटा और फिर पूर्णतया भगवान् की ओर मुड़ गए, चाहे तपस्या से, भगवान् की शरण लेकर, या आजीवन उपासना से। सांसारिक अधिपत्य, कितना भी भव्य हो, तभी सार्थक होता है जब वह भगवान् के चरणों में रखा जाए।

भगवान् स्वयं लोकों को धारण करते हैं। लोकालोक पर परम पुरुष विष्वक्सेन और अपने पार्षदों सहित निवास करते हैं, उन गजराजों और लोकपालों को बल देते हुए जो भूमण्डल को सन्तुलन में रखते हैं। सृष्टि स्वयं को धारण नहीं करती; वह प्रत्येक क्षण भगवान् की स्नेहमय शक्ति पर टिकी है।

सूर्य परम की ओर एक झरोखा है। समस्त प्राणियों की आत्मा और दृष्टि के दाता के रूप में, स्वयं दिशाओं और लोकों को विभाजित करते हुए, सूर्य दृश्य वैभव में उस अदृश्य भगवान् की उपस्थिति प्रकट करता है जो सबके भीतर निवास करते हैं।

एक भक्तिपूर्ण चिन्तन

इस अध्याय में एक शान्त आनन्द है जो दर्शन के विस्तृत होते ही हम पर छा जाता है। लोक के परे लोक खुलता है, प्रत्येक अपने चमकते सागर और अपने महान् वृक्ष के साथ, प्रत्येक ऐसे प्राणियों से भरा जिनसे हम कभी नहीं मिलेंगे — और फिर भी उनमें से प्रत्येक में वही एक बात हो रही है। हाथ प्रार्थना में उठाए जा रहे हैं; एक ही भगवान् से प्रेम किया जा रहा है। कहीं सूर्य पूजा जाता है, तो कहीं चन्द्र, अग्नि, जल, वायु, या अपने स्वर्ण-कमल पर विराजमान ब्रह्मा — प्रत्येक लोक का हृदय उपासना है। और वह कोमल सत्य समस्त सागरों के पार चुपचाप हम तक पहुँचता है। क्योंकि हम भी भगवान् की रचित एक भूमि पर रहते हैं, एक ऐसे सूर्य के नीचे जो उनके मुख का झरोखा है, एक ऐसी वायु में श्वास लेते हुए जो उनकी अपनी अन्तर्यामी उपस्थिति है, हमें भीतर से धारण करती हुई। यह ब्रह्माण्डीय दर्शन हमें छोटा अनुभव कराने को नहीं, अपितु सँभाला हुआ अनुभव कराने को दिया गया है — यह दिखाने को कि यह समूची अपरिमेय सृष्टि एक महान् मन्दिर है, और हमारी अपनी छोटी-सी प्रार्थना उस स्वर-सागर में मिल जाती है जो ब्रह्माण्ड को भर देता है। इतने विशाल लोक को देखकर, उसके ठीक केन्द्र में और ठीक किनारे पर, वही प्रियतम भगवान् पाना — यही अपने आप में एक प्रकार की उपासना है। आइए उस अनन्त गान में हम अपना विनम्र स्थान लें।

एक दैनिक भक्ति-साधना

आज, बाहर निकलिए और सूर्य की ओर देखिए, और स्मरण कीजिए जो भागवत ने आपको दिखाया है: कि उसका प्रकाश सर्वप्राचीन भगवान् विष्णु का एक प्रत्यक्ष रूप है, समस्त जीवों की आत्मा, आपकी दृष्टि का ही दाता। जब आप उसकी ऊष्मा अनुभव करें, या उस वायु में श्वास लें जो उनकी अन्तर्यामी उपस्थिति होकर आपको धारण करती है, तब कृतज्ञता का एक सरल शब्द अर्पित कीजिए और मन ही मन कहिए: “ॐ

नमो भगवते वासुदेवाय।” सृष्टि के किसी एक साधारण तत्त्व को — सूर्य-प्रकाश, जल, श्वास, या आपके दीपक की ज्वाला को — अपने लिए उस भगवान् का द्वार बनने दीजिए जो उसके पीछे निवास करते हैं। इस प्रकार समूचा संसार, जैसा प्रत्येक द्वीप के भाग्यशाली लोगों के लिए है, एक उपासना-स्थल बन जाता है।

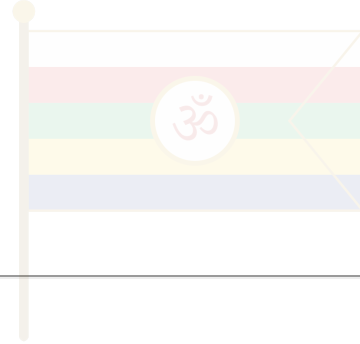
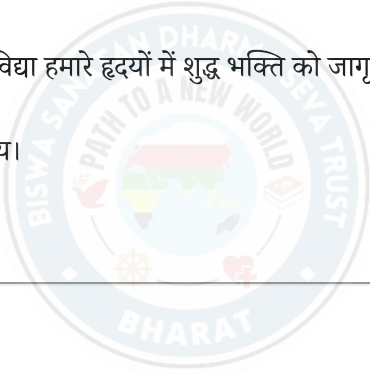
उपसंहार

पंचम स्कन्ध का बीसवाँ अध्याय हमारे लिए अद्भुत विस्तार का एक दर्शन खोलता है। श्रीशुक राजा परीक्षित को — और हमें — जम्बूद्वीप से परे छह महान् द्वीपों के पार ले जाते हैं: प्लक्ष, शाल्मल, कुश, क्रौञ्च, शाक और पुष्कर, प्रत्येक अपने ही मधुरता के सागर से घिरा, प्रत्येक एक शक्तिशाली वृक्ष से मण्डित, प्रत्येक प्रियव्रत के एक पुत्र से शासित जिसने समय आने पर सब कुछ भगवान् को दे दिया। और इनमें से प्रत्येक लोक में लोग उसी परम भगवान् को दिव्य वेश में नमन करते हैं: कहीं सूर्यदेव, कहीं चन्द्रदेव, और कहीं अग्नि, पावन जल, प्राणवायु या चतुर्मुख ब्रह्मा के रूप में। इन सबसे परे लोकालोक उठता है, वह वलयाकार पर्वत जो प्रकाश को अन्धकार से विभाजित करता है, जहाँ चार गजराज भूमण्डल को धारण करते हैं और स्वयं भगवान् प्रत्येक लोक के कल्याण के लिए विष्वक्सेन सहित निवास करते हैं; और ब्रह्माण्ड-अण्ड के केन्द्र में सूर्य चमकता है, समस्त प्राणियों की आत्मा और नेत्र। हमारे साथ जो रह जाता है वह मानचित्र की विशालता नहीं, अपितु उसके हृदय की कोमलता है: कि समस्त माप से परे एक सृष्टि में, वही एक प्रियतम भगवान् सर्वत्र उपस्थित हैं, प्रत्येक लोक में पूजे जाते हैं, सबको धारण करते हुए।

श्रीमद्भागवतम् की दिव्य विद्या हमारे हृदयों में शुद्ध भक्ति को जागृत करे।

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय।

जय श्री माधव।



संदर्भ एवं आभार

- मूल संस्करण: गीता प्रेस, श्रीमद्भागवत महापुराण, पंचम स्कन्ध, बीसवाँ अध्याय (मूल अंग्रेज़ी शीर्षक हेतु ऊपर अध्याय-शीर्षक टिप्पणी देखें)।
- शृंखला: श्रीमद्भागवतम् विज्ञान · विश्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट।
- पण्डित डॉ. श्री काशीनाथ मिश्र के आध्यात्मिक मार्गदर्शन एवं अनुशंसा के अनुसार प्रस्तुत।

यह लेखक के अपने शब्दों में एक मौलिक, श्रद्धापूर्ण पुनर्कथन है, जिसमें संक्षिप्त उद्धृत श्लोक देवनागरी एवं लिप्यन्तरण में दिए गए हैं और उनके अर्थ सारांश-रूप में। यह किसी एक प्रकाशक के सतत अनुवाद अथवा टीका का पुनरुत्पादन नहीं है। किसी प्रकाशक के संरक्षण अथवा समर्थन का कोई भाव अभिप्रेत नहीं है।

॥ हरि ॐ तत्सत् ॥

जय श्री माधव

ऑनलाइन पढ़ें: kalkiabatara.org/hi/blog-srimad-bhagavatam-canto-5-chapter-20-six-dvipas-and-lokaloka-mountain-hi.html

श्रीमद्भागवतम् विज्ञानम् • कल्कि अवतार इंटरनेशनल • बिस्व सनातन धर्म सेवा ट्रस्ट

